भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology)

सत्र (Session)-1

1.1 मौलिक अवधारणाएं (Fundamental Concepts)

शब्द "जियोमॉर्फोलॉजी" ग्रीक मूल "जियो", "मॉर्फो" और "लोगो" से आया है जिसका अर्थ क्रमशः "पृथ्वी", "रूप" और "अध्ययन" है। इसलिए भू-आकृति विज्ञान का शाब्दिक अर्थ है "पृथ्वी के स्वरूपों का अध्ययन"। भू-आकृतिविज्ञानी मुख्य रूप से पृथ्वी की सतही विशेषताओं के अध्ययन से संबंधित हैं, जिसमें उनकी उत्पत्ति और विकास और मानव गतिविधि पर प्रभाव शामिल है।

भू-आकृति विज्ञान की मूल या मौलिक अवधारणाएँ इस प्रकार हैं:

1. **यद्यपि 'भू-आकृतिविज्ञान' शब्द का प्रयोग सम्भवतः सबसे पहली बार 1880 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका के मैकगी (McGee) तथा जे. डब्ल्यू. पॉवेल (J.W. Powell) नामक भूवैज्ञानिकों ने किया था, किन्तु भूआकृतिक विचारधारा के विकास का इतिहास इससे कहीं अधिक पुराना है।** दूसरे शब्दों में, भूआकृतिविज्ञान के डेविस-पूर्व युग (pre-Davisian era) में भूआकृतिविज्ञान नाम का कोई विज्ञान नहीं था किन्तु उस युग में भूविज्ञान व अन्य प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में कुछ ऐसे अध्ययन हुए थे जिन्हें आज हम भूआकृतिविज्ञान की प्रारंभिक विचारधारा कहते हैं। प्राचीन ग्रीक व रोमन दार्शनिकों व प्रकृतिविज्ञान (naturalist) की भूआकृतिक विचारधारा इसका उदाहरण है। ब्रिटेन व अमेरिका में भूवैज्ञानिक-भूआकृतिविज्ञान (geologic-geomorphology) का विकास हुआ, जिसे डब्ल्यू.एम. डेविस (W.M. Davis, 1850-1934) के व्याख्यानों व लेखों से अद्वितीय योगदान प्राप्त हुआ था। आधुनिक भूआकृतिज्ञ 'वर्तमान को भूतकाल की कुंजी' मानकार भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थलरूपों की उत्पत्ति के ढंग की व्याख्या करते हैं। इस उपगमन के अनुसार प्रत्येक स्थलरूप शैल-संरचना (rock structure), भूआकृतिक प्रक्रम (geomorphic process) तथा विकास की अवस्था (stage) के सम्मिलित प्रभावों का परिणाम होता है। अतः किसी एकाकी स्थलरूप या स्थलरूपों के समुच्चय से निर्मित दृश्यभूमि के सम्बंध में कोई निष्कर्ष निकालने से पूर्व उपर्युक्त तीनों कारकों का सही-सही ज्ञान होना आवश्यक है। वस्तुतः स्थलरूपों के क्रमबद्ध विकास के बारे में हमारा समूचा ज्ञान इसी वैज्ञानिक उपगमन की देन है।
2. **एकरूपतावाद का सिद्धांत :** वही भौतिक प्रक्रियाएँ और नियम जो आज संचालित होते हैं, पूरे भूगर्भिक समय में संचालित होते हैं, हालाँकि जरूरी नहीं कि वे अब जितनी तीव्रता के साथ हों। यह भूविज्ञान का महत्वपूर्ण सिद्धांत है और इसे एकरूपतावाद के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है। इसे पहली बार 1785 में हटन द्वारा प्रतिपादित किया गया था। हटन के अनुसार **"वर्तमान अतीत की कुंजी है"**। उनके अनुसार भूगर्भिक प्रक्रियाएँ पूरे भूगर्भिक समय में उसी तीव्रता के साथ संचालित होती थीं जैसी अब हैं।
3. **भूगर्भिक संरचना, भू-आकृतियों के विकास में एक प्रमुख नियंत्रण कारक है और उनमें परिलक्षित होती है।** भूमि विकास में प्रमुख नियंत्रक कारक "संरचना" और "प्रक्रम" है। यहां "संरचना" शब्द में न केवल शैलों में मोड़ या भ्रंश आदि शामिल हैं, बल्कि वे सभी तरीके भी शामिल हैं जिनसे पृथ्वी के शैल की खनिज संरचना में भौतिक और रासायनिक गुणों की विभिन्नता देखि जाती है जिसमें चट्टान की विशालता; घटक खनिजों की कठोरता; रासायनिक परिवर्तन के प्रति खनिज घटकों की संवेदनशीलता; चट्टानों की पारगम्यता और अभेद्यता; और विभिन्न अन्य तरीके जिनसे पृथ्वी की परत की चट्टानें एक दूसरे से भिन्न होती हैं।
4. **सतह पर व्याप्त उच्चावच की विभिन्नता का एक मूल कारण भू-आकृतिक प्रक्रमों का अलग-अलग दरों पर संचालित पर संचालित होना हैं।**
   पृथ्वी की पपड़ी की चट्टानें अपनी लिथोलॉजी और संरचना में भिन्न होती हैं और इसलिए क्रमिक प्रक्रियाओं के लिए अलग-अलग डिग्री के प्रतिरोध की पेशकश करती हैं। चट्टानों की संरचना और संरचनाओं में अंतर न केवल क्षेत्रीय भू-आकृतिक परिवर्तनशीलता में बल्कि स्थानीय स्थलाकृति में भी परिलक्षित होता है। तापमान, नमी, ऊंचाई, स्थलाकृतिक विन्यास और वनस्पति आवरण की मात्रा और प्रकार जैसे कारकों में अंतर के जवाब में विशेष प्रक्रियाओं की स्थानीय तीव्रता उल्लेखनीय रूप से बदल सकती है।
5. **भू-आकृतिक प्रक्रम स्थल-रूपों पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ते हैं, और प्रत्येक भू-आकृतिक प्रक्रिया स्थल-रूपों का अपना एक विशिष्ट संग्रह/संयोजन विकसित करती है।**
   प्रक्रम/प्रक्रिया शब्द उन कई भौतिक और रासायनिक तरीकों पर लागू होता है जिनके द्वारा पृथ्वी की सतह में संशोधन होता है। सामान्यतः अंतर्जात प्रक्रिया में स्थल-रूपों का निर्माण/उत्थान या पुनर्स्थापन होता है जबकि बहिर्जात प्रक्रियाओं (अपक्षय, भूस्खलन, क्षरण जैसे बाहरी बलों के परिणाम) से स्थल-रूपों का निम्नीकरण होता है; अन्यथा पृथ्वी की सतह अंततः काफी हद तक सस्थल-रूप विहीन एवं समतल हो जाएगी।

6. **जैसे-जैसे विभिन्न अपरदन के कारक पृथ्वी की सतह पर कार्य करते हैं, स्थल-रूपों का एक व्यवस्थित क्रमबद्ध अनुक्रम उत्पन्न होता है।**

स्थल-रूपों में उनके विकास के चरण के आधार पर उनकी चारित्रिक विशेषताएं होती हैं। इस विचार पर डब्लू.एम. डेविस ने सबसे अधिक जोर दिया और इस विचार से उनकी अपरदन चक्र की अवधारणा और युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था के सहवर्ती चरणों का विकास हुआ, जिसका समापन पेनेप्लेन नामक लगभग समतल एवं निम्न उच्चावच की स्थलाकृतिक सतह में हुआ।

7. **भू-आकृतिक विकास में जटिलता प्रधान है नाकि सरलता।**

आमतौर पर स्थलाकृति और भूदृश्य के निर्माण में अनेक अपरदन चक्रों का योगदान होता है। अधिकांश स्थलाकृतिक क्षेत्र, क्षरण के वर्तमान चक्र के दौरान उत्पन्न हुए हैं, लेकिन पूर्व चक्रों के दौरान उत्पन्न गुणधर्मों के अवशेष भी क्षेत्र के भीतर मौजूद हो सकते हैं। आमतौर पर हम एक चक्र के प्रभुत्व को पहचानने में सक्षम हैं। अनेक चक्रों के प्रभावों से भू-आकृतिक विकास जटिल होता चला जाता है।

भू-आकृतिक विकास की उपर्युक्त जटिलता को प्रमाणित करने के लिए लीलैंड होरबर्ग ने स्थल-रूपों / दृश्य-भूमियों को पांच वर्गों में विभाजित किया था:

i) सरल स्थल-रूप / दृश्य-भूमि
ii) मिश्र/मिश्रित स्थल-रूप / दृश्य-भूमि
iii) एकचक्री स्थल-रूप / दृश्य-भूमि
iv) बहुचक्रीय स्थल-रूप / दृश्य-भूमि
v) पुनः प्रकटित स्थल-रूप / दृश्य-भूमि

i) **सरल स्थल-रूप/दृश्य-भूमि** वे हैं जो एक प्रमुख भू-आकृतिक प्रक्रिया का उत्पन्न होते हैं।

ii) **मिश्रित स्थल-रूप/दृश्य-भूमि** वे हैं जिनमें एक से अधिक भू-आकृतिक प्रक्रियाओं ने मौजूदा स्थलाकृति के विकास में प्रमुख भूमिका निभाई है।

iii) **एकचक्री स्थल-रूप/दृश्य-भूमि** वे हैं जिन पर अपरदन के केवल एक चक्र की छाप होती है;

iv) **बहुचक्रीय स्थल-रूप/दृश्य-भूमिः** पृथ्वी की अधिकांश स्थलाकृति पर एक से अधिक क्षरण काल की छाप मौजूद है। अपरदन के एक से अधिक चक्रों के दौरान बहुचक्रीय भूदृश्यों का निर्माण हुआ है।

v) **पुनः प्रकटित स्थल-रूप/दृश्य-भूमि :** खोदे गए या पुनर्जीवित किए गए परिदृश्य वे हैं जो भूवैज्ञानिक समय की किसी पिछली अवधि के दौरान बने थे, फिर आग्नेय या तलछटी उत्पत्ति के एक आवरण द्रव्यमान के नीचे दबे हुए थे, फिर बाद में निरावरण के माध्यम से उजागर हुए।

8. **केवल कुछ ही पृथ्वी की वर्तमान स्थलाकृति, तृतीयक कल्प से पुरानी है, अधिकांश तो प्लीस्टोसीन युग से भी पुरानी नहीं है।**

हमारी वर्तमान स्थलाकृति के अधिकांश विवरण संभवतः प्लेइस्टोसिन से पहले के नहीं हैं, और निश्चित रूप से इसका बहुत कम हिस्सा तृतीयक कल्प की सतही स्थलाकृति के रूप में मौजूद था। हिमालय संभवतः सबसे पहले क्रेटेशियस में और बाद में इओसीन और मियोसीन में वलित हुए थे, लेकिन उनकी वर्तमान ऊंचाई प्लेइस्टोसिन युग तक प्राप्त नहीं हुई थी।

9. **प्लेइस्टोसिन के दौरान भूगर्भिक और जलवायु परिवर्तनों के विविध प्रभावों की पूरी सराहना के बिना वर्तमान भू-दृश्यों/ स्थलाकृतियों की उचित व्याख्या असंभव है।**

प्लेइस्टोसिन का वर्तमान स्थलाकृति पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। हिमनदों ने सीधे तौर पर कई मिलियन वर्ग मील को प्रभावित किया, शायद 10,000,000 वर्ग मील तक, लेकिन इसका प्रभाव वास्तव में हिमाच्छादित क्षेत्रों से कहीं आगे तक फैल गया। हिमनदों के बहिर्प्रवाह और हिमनदों की उत्पत्ति की हवा में उड़ने वाली सामग्री का विस्तार उन क्षेत्रों में हुआ जहां हिमनद नहीं थे, और जलवायु संबंधी प्रभाव संभवतः विश्वव्यापी स्तर पर थे। मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों में जलवायु का प्रभाव गहरा था। इस बात के निर्विवाद प्रमाण हैं कि कई क्षेत्र जो आज शुष्क या अर्धशुष्क हैं, हिमयुग के दौरान वहां आर्द्र जलवायु होती थी।

10. **विभिन्न भू-आकृतिक प्रक्रियाओं के अलग-अलग महत्व की उचित समझ के लिए विश्व जलवायु की सराहना आवश्यक है।**

जलवायु संबंधी विविधताएँ अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से भू-आकृतिक प्रक्रियाओं के संचालन को प्रभावित कर सकती हैं। अप्रत्यक्ष प्रभाव काफी हद तक इस बात से संबंधित हैं कि जलवायु किसी स्थान के वनस्पति आवरण की मात्रा, प्रकार और वितरण को कैसे प्रभावित करती है। प्रत्यक्ष नियंत्रण इस प्रकार हैं जैसे वर्षा की मात्रा और प्रकार, उसकी तीव्रता, वर्षा और वाष्पीकरण और तापमान की दैनिक सीमा के बीच संबंध।

11. **भू-आकृति विज्ञान, हालांकि मुख्य रूप से वर्तमान भू-दृश्यों /स्थल-रूपों से संबंधित है, किन्तु इन स्थल-रूपों की ऐतिहासिक जानकारी भी अत्यधिक उपयोगी होती।**

भू-आकृति विज्ञान मुख्य रूप से वर्तमान परिदृश्य की उत्पत्ति से संबंधित है, लेकिन अधिकांश परिदृश्यों में ऐसे वर्तमान रूप हैं जो पिछले भूवैज्ञानिक युगों या अवधियों के हैं। इस प्रकार एक भू-आकृतिविज्ञानी को एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए मजबूर होना पड़ता है यदि उसे किसी क्षेत्र के भू-आकृतिक इतिहास की ठीक से व्याख्या करनी है। पुरा-भूआकृति विज्ञान में प्राचीन अपर दित/सतहों की पहचान और प्राचीन स्थलाकृतियों का अध्ययन शामिल है।

1.2 पृथ्वी की उत्पति (Origin of the Earth)

विभिन्न वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों ने पृथ्वी की उत्पत्ति से संबंधित अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। पृथ्वी की उत्पत्ति से संबंधित सभी विचारों और अवधारणाओं को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है जैसे

(i) धार्मिक अवधारणाएँ और

(ii) वैज्ञानिक अवधारणाएँ।

चूँकि धार्मिक अवधारणाओं का कोई तार्किक और वैज्ञानिक आधार नहीं है, इसलिए इन्हें आधुनिक वैज्ञानिक समुदाय द्वारा खारिज कर दिया गया है। पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों और वैज्ञानिकों द्वारा बड़ी संख्या में परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की गई। हालाँकि, बाद के समय में वैज्ञानिकों ने केवल पृथ्वी या ग्रहों की बजाय ब्रह्मांड की उत्पत्ति की समस्याओं को उठाया।

पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिक अवधारणाओं:

I. अद्वैतवादी संकल्पना (Monistic Concept): कांट की वायव्य राशि परिकल्पना (Kant's Gaseous Hypothesis) लाप्लास की निहारिका परिकल्पना (Nebular Hypothesis of Laplace)

II. द्वैतवादी संकल्पना (Dualistic Concept):

1. चौम्बरलिन व मोल्टन की ग्रहाणु परिकल्पना (Planetsimal Hypothesis)
2. जेम्स जीन्स (1919 ई.) व जेफरिज (1921 ई.) की ज्वारीय परिकल्पना (Tidal Hypothesis)
3. रसेल की द्वैतारक परिकल्पना (Binary Star Hypothesis)
4. ऑटो श्मिड की अंतरतारक धूल परिकल्पना (Inter-Steller Dust Theory)
5. फ्रेड होयल व लिटिलटन की अभिनव तारा परिकल्पना :

पृथ्वी की उत्पत्ति की प्रमुख संकल्पनाएँ निम्लिखित हैं:

1. गैसीय एवं नेब्यूलर/ निहारिका परिकल्पना

पहली और अत्यंत लोकप्रिय तर्कों में से एक जर्मन दार्शनिक इमैनुएल कांट का था। गणितज्ञ लाप्लास ने 1796 में इसे संशोधित किया। इसे **नेब्यूलर परिकल्पना** के नाम से जाना जाता है। परिकल्पना में माना गया कि ग्रहों का निर्माण युवा सूर्य से सम्बंदित पदार्थ के एक बादल, जिसे नाब्युला/ निहारिका कहा जाता है, से हुआ था।

कांट ने कुछ मान्यताओं के आधार पर पृथ्वी की उत्पत्ति की अपनी गैसीय परिकल्पना प्रस्तुत की। उनका मानना था कि अलौकिक रूप से निर्मित **आदिम पदार्थ** (Primordial matter) पूरे ब्रह्मांड में बिखरा हुआ था। धीरे धीरे इन बहुत ठंडे, ठोस और गतिहीन कणों से बने गैस और पदार्थ ने एक घूर्णन करने वाले

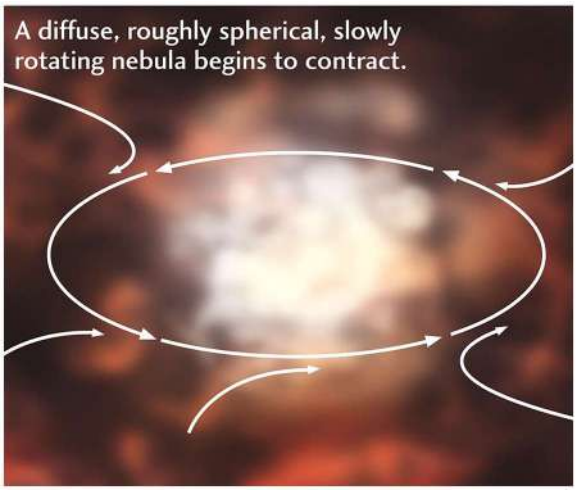

बादल का रूप ग्रहण कर लिया। कण अपने पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण आकर्षण के कारण एक दूसरे से टकराने लगे। कणों के बीच इस पारस्परिक आकर्षण और टकराव ने आदिम पदार्थ में **यादृच्छिक/अनियमित (random) गति** उत्पन्न की। टकराव के कारण गर्मी उत्पन्न हुई और इस प्रकार, आदिम पदार्थ का तापमान बढ़ने लगा। कांत ने यह भी कहा कि कणों की यादृच्छिक गति से आदिम पदार्थ में घूर्णन गति भी उत्पन्न होती है। इस प्रकार, पदार्थ का मूल ठंडा और गतिहीन बादल आगे चलकर एक विशाल गर्म नीहारिका बन गया और अपनी धुरी पर घूमने लगा। तापमान में वृद्धि ने आदिम पदार्थ की अवस्था को भी ठोस से गैसीय कणों में बदल दिया। तापमान और घूर्णन गति की दर में लगातार वृद्धि के साथ निहारिका का आकार बढ़ने लगा।

इमैनुअल कांट के अनुसार जैसे-जैसे गर्मी बढ़ती गई, निहारिका का आकार बढ़ता गया और जैसे-जैसे नीहारिका का आकार बढ़ता गया, कोणीय वेग या घूर्णन गति और बढ़ती गई और इस प्रकार घूर्णी गति इतनी तेज हो गई कि केन्द्रापसारक बल आकर्षण या अभिकेन्द्रीय बल से अधिक हो गया। निहारिका इतनी तेजी से घूमने लगी कि एक अनियमित वलय नीहारिका के मध्य भाग से अलग हो गया और अंततः केन्द्रापसारक बल के कारण दूर फेंक दिया गया। उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति से संकेंद्रित वलयों की एक प्रणाली नीहारिका से अलग हो गई। नेबुला का अवशिष्ट केंद्रीय द्रव्यमान सूर्य के समान रहा। छल्लों की अनियमितता के कारण संबंधित ग्रहों के निर्माण के लिए कोर का विकास हुआ। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक वलय के सभी पदार्थ एक बिंदु पर एकत्रित होकर एक कोर बन गए या गाँठ जो अंततः समय के साथ एक ग्रह के रूप में विकसित हुई। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कांट के अनुसार पृथ्वी का निर्माण केन्द्रापसारक बल के कारण नेबुला से अलग हुए वलय के सभी पदार्थों के एकत्रीकरण से हुआ है। इसी प्रक्रिया को दोहराकर नवगठित ग्रहों से छल्ले अलग कर दिए

गए और प्रत्येक छल्ले के पदार्थ संघनित होकर संबंधित ग्रहों के उपग्रह बन गए। इस प्रकार, सूर्य, नौ ग्रहों और उनके उपग्रहों से युक्त पूरे सौर मंडल का निर्माण हुआ।

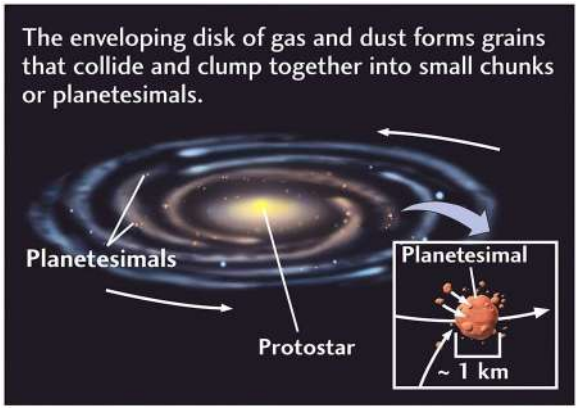

लाप्लास का नेब्यूलर/निहारिका सिद्धांत

लाप्लास ने कांट की परिकल्पना के अंतर्निहित कमजोर बिंदुओं और गलत अवधारणाओं को हटाने के बाद अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की। कांट की परिकल्पना 3 बुनियादी दोषों से ग्रस्त थी।

1. आदिम पदार्थ के ठंडे कणों के टकराने से बड़ी मात्रा में ऊष्मा उत्पन्न नहीं हो पाती;
2. कणों के परस्पर टकराव से आदिम पदार्थ में गति तथा यादृच्छिकता उत्पन्न नहीं हो सकती;
3. निहारिका के आकार में वृद्धि के कारण निहारिका की घूर्णन गति का कोणीय वेग नहीं बढ़ सकता।

कांट की परिकल्पना के दोषों को दूर करने के लिए लाप्लास ने पृथ्वी की उत्पत्ति की पहेली को सुलझाने के लिए अपनी नीहारिका परिकल्पना के प्रतिपादन के लिए कुछ स्वयंसिद्ध सिद्धांतों को ग्रहण किया।

1. उन्होंने मान लिया कि अंतरिक्ष में एक विशाल और गर्म गैसीय नीहारिका है। इस प्रकार, उन्होंने अनुमान के माध्यम से निहारिका की गर्मी की समस्या को हल किया।
2. विशाल एवं गर्म नीहारिका प्रारंभ से ही अपनी धुरी पर घूम रही थी।
3. विकिरण की प्रक्रिया के माध्यम से अपनी बाहरी सतह से गर्मी की हानि के कारण निहारिका लगातार ठंडी हो रही थी और इस प्रकार शीतलन के संकुचन के कारण इसका आकार लगातार कम हो रहा था।

लाप्लास के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति:

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर लाप्लास ने कहा कि अंतरिक्ष में एक गर्म और घूमने वाली विशाल गैसीय नीहारिका थी। नेबुला की गोलाकार गति या घूर्णन के कारण विकिरण के माध्यम से नेबुला की बाहरी सतह से धीरे-धीरे ऊष्मा कम हो रही थी। इसके परिणामस्वरूप शीतलन के कारण निहारिका का आकार धीरे-धीरे केंद्रित होकर घटने लगा। इस प्रकार, निहारिका के आकार और आयतन में कमी से निहारिका का वृत्ताकार वेग बढ़ गया। जैसे-जैसे नीहारिका का आकार घटता गया, घूर्णन गति का वेग बढ़ता गया। इस प्रकार, निहारिका बहुत तेज गति से घूमने लगी और परिणामस्वरूप केन्द्रापसारक बल इतना अधिक हो गया कि यह अभिकेन्द्रीय बल से भी अधिक हो गया। जब यह अवस्था पहुँची तो नीहारिका के भूमध्य रेखा पर स्थित पदार्थ एवं वस्तुऐं भारहीन हो गई।

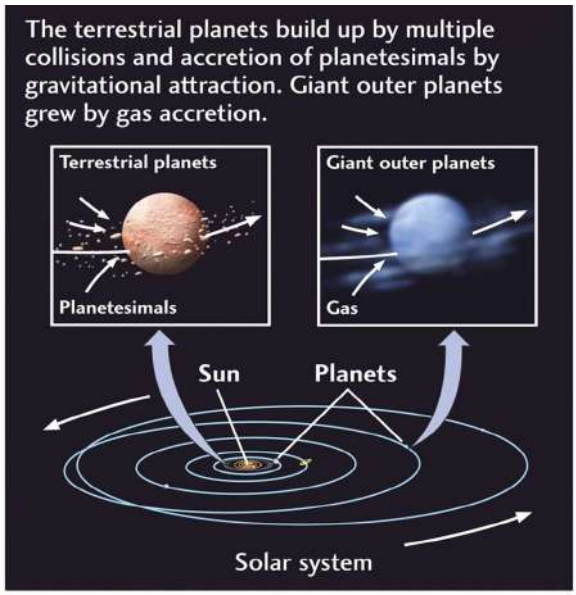

नतीजतन, नाब्युला की भूमध्य रेखीय बाहरी परत (रिंग) अत्यधिक शीतलन के कारण अलग हो गई थी और नेबुला के ठन्डे होते और संघनित होते केंद्रीय नाभिक के साथ घूम नहीं सकी। इस कारण से बाहरी रिंग नेबुला से अलग हो गई और यह नेबुला के चारों ओर घूमना शुरू कर दिया। यह बाहरी रिंग, धीरे धीरे नौ वलयों में विभाजित हो गयी और बाहर की दिशा में फैलते हुए प्रत्येक वलय दूसरे वलय से दूर जाने लगा। प्रत्येक वलय की सभी सामग्री एक बिंदु या गाँठ पर शगर्म गैसीय पुंजश के रूप में संघनित होती गयी। ऐसे प्रत्येक समूह को बाद में ठंडा और संघनित करके ग्रह बनते चले गए। इस प्रकार, नौ गैसीय वलयों से नौ ग्रह बने और निहारिका का शेष पदार्थीय केंद्रक सूर्य बन गया। उपरोक्त तंत्र एवं प्रक्रियाओं की पुनरावृत्ति के फलस्वरूप ग्रहों से उपग्रहों का निर्माण हुआ।

2. "द्वितारक सिद्धांत":

1900 में, चेम्बरलेन और मौलटन ने माना कि एक भटकता हुआ तारा सूर्य के पास आ रहा है। परिणामस्वरूप, सामग्री का एक सिगार के आकार का विस्तार सौर सतह से अलग हो गया। जैसे-जैसे गुजरता तारा दूर चला गया, सौर सतह से अलग हुआ पदार्थ सूर्य के चारों ओर घूमता रहा और वह धीरे-धीरे संघनित होकर ग्रहों में बदल गया। सर जेम्स जीन्स और बाद में सर हेरोल्ड जेफरी ने इस तर्क का समर्थन किया। बाद की तारीख में, सूर्य के सह-अस्तित्व के बारे में तर्क सह-अस्तित्व में थे। इन तर्कों को **द्वितारक सिद्धांत** कहा जाता है।

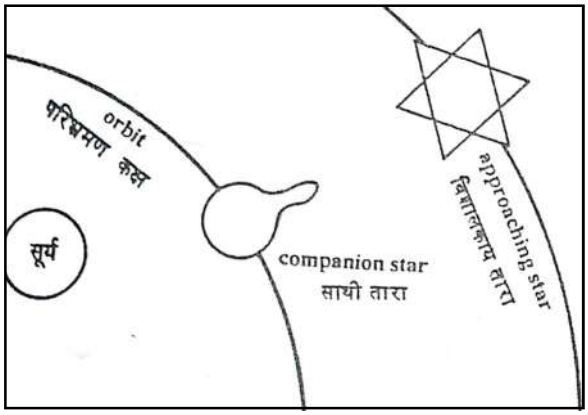

3. धूल-कण सिद्धांत

1950 में, रूस में ओटो श्मिट और जर्मनी में कार्ल वीजास्कर ने श्नेबुलर परिकल्पनाश को कुछ हद तक संशोधित किया, हालांकि विवरण में भिन्नता थी। उनका मानना था कि सूर्य सौर नीहारिका से घिरा हुआ है जिसमें अधिकतर हाइड्रोजन और हीलियम के साथ-साथ धूल भी कहा जा सकता है। कणों के घर्षण और टकराव से डिस्क के आकार के बादल का निर्माण हुआ और अभिवृद्धि की प्रक्रिया से ग्रहों का निर्माण हुआ।

1.3 पृथ्वी की आंतरिक एवं स्थलमंडलीय चट्टानें
Earth's Interior & Lithospheric Rocks

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृथ्वी की आंतरिक संरचना और संघटन इसकी तापीय और भौतिक स्थिति से चरितार्थ होती है। भू-आकृति विज्ञानियों द्वारा अध्ययन की गई सतह की विशेषताएं न केवल उन्हें बनाने वाली विभिन्न शक्तियों पर निर्भर करती हैं, बल्कि पृथ्वी की भौतिक आंतरिक संरचना पर भी निर्भर करती हैं। भूगर्भिक गुणधर्म जैसे शैलों की खनिज सामग्री और शैलों का प्रकार इत्यादि, स्थलमंडलीय सतह की विशेषताओं एवं प्रक्रियाओं को बहुत प्रभावित करता है। पृथ्वी की सतह की विशेषताओं की भौगोलिक भिन्नता को समझने के लिए, हमें पृथ्वी को निर्माणकारी पदार्थ एवं उनकी उत्पत्ति के बारे में मौलिक ज्ञान की आवश्यकता है।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना का अध्ययन करने के स्रोतः

पृथ्वी का आंतरिक भाग अदृश्य व अगम्य है। मनुष्य ने खनन एवं वेधन क्रियाओं के द्वारा इसके कुछ ही किलोमीटर तक के आन्तरिक भाग को प्रत्यक्ष रूप में देखा है। गहराई के साथ तापमान में तेजी से वृद्धि के कारण अधिक गहराई तक खनन व वेधन कार्य करना संभव नहीं है। भूगर्भ मे इतना अधिक तापमान है कि वह वेधन में प्रयोग किये जाने वाले किसी भी प्रकार के यंत्र को पिघला सकता है अतः वेधन कार्य कम गहराई तक ही सीमित है । इसलिए पृथ्वी के गर्भ के विषय में प्रत्यक्ष जानकारी के मिलने मे कई कठिनाईयां आती है।

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के विषय में जानकारी देने वाले साधनों को निम्न वर्गा में रखा जा सकता है–

I. भूगर्भ की संरचना की जानकारी के प्रत्यक्ष स्रोत साधन
II. भूगर्भ की संरचना की जानकारी के अप्रत्यक्ष स्रोत साधन

I. भूगर्भ की संरचना की जानकारी के प्रत्यक्ष स्रोत साधन

प्रत्यक्ष स्रोत केवल कुछ हद तक ही पृथ्वी के आंतरिक भाग के बारे में जानकारी का पता लगा सकते हैं।

1. सतह चट्टान के नमूने

सतह की चट्टानें वास्तव में पृथ्वी की आसानी से उपलब्ध सामग्री हैं। सोने की खदानें लगभग 5 किमी की गहराई तक जाती हैं। किन्तु केवल सतह की चट्टानों के अध्ययन से पृथ्वी की आंतरिक संरचना का पूर्ण अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

2. वैज्ञानिक परियोजनाओं से अवलोकनः

'Deep Ocean Drilling Project' and 'Integrated Ocean Drilling Project'. 'डीप ओशन ड्रिलिंग प्रोजेक्ट' और 'इंटीग्रेटेड ओशन ड्रिलिंग प्रोजेक्ट'।

सबसे गहरा ड्रिल/ वेदन आर्कटिक महासागर में कोला में है, जो अब तक 12 किमी की गहराई तक पहुंच चुका है।

3. ज्वालामुखी उदगार (Volcanic eruptions): लावा का अन्वेषण ज्वालामुखी उद्गार से निकले तत्व व तरल मैगमा से यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी अन्दर का कुछ भाग तप्त व तरल मैग्मा अवस्था में है। ज्वालामुखी उद्गार से निकले लावा एवं गैस आन्तरिक संरचना के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी के अन्य स्त्रोत है, परन्तु यह निश्चय कर पाना कठिन होता है कि यह मैग्मा कितनी गहराई से निकला है।

II. अप्रत्यक्ष स्रोत (पदार्थ के गुणधर्म का विश्लेषण (Analysis of Properties of Matter)

1. उल्काएं / उल्कापात (Meteorite Shower): इनकी संरचना हमारी पृथ्वी की तरह होती है। इनके अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि उल्काओं की रचना में निकल और लोहा पाया जाता है। पृथ्वी भी सौर्य-परिवार की एक सदस्य है। पृथ्वी में चुम्बकत्व का गुण पाया जाता है, आन्तरिक भाग में निकल-मिश्रित लोहे के कारण पृथ्वी में यह गुण उत्पन्न हुआ है।

2. गुरुत्वाकर्षण बलः यह विभिन्न स्थानों पर परिवर्तनशील होता है। अवलोकनों से पता चलता है कि गुरुत्वाकर्षण

शक्ति ध्रुवों पर अपेक्षाकृत अधिक और भूमध्य रेखा पर कम होती है। यह केंद्र से बढ़ती दूरी के कारण है। अलग-अलग स्थानों पर गुरुत्वाकर्षण की भिन्नता अनेक अन्य कारकों से भी प्रभावित होती है। इस भिन्नता को गुरुत्व विसंगति (Gravity anomaly) कहा जाता है। गुरुत्व विसंगति हमें भूपर्पटी में पदार्थ के द्रव्यमान के वितरण की जानकारी देती है।

3. **चुंबकीय सर्वेक्षण:** चुंबकीय सामग्री का प्रसार पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र का विचार देता है, जो पृथ्वी के आंतरिक भाग में मौजूद सामग्री के घनत्व और प्रकार को इंगित करता है।
4. **भूकंपीय गतिविधि:** कम्प विज्ञान से भूगर्भ की संरचना के विषय में अधिक वैज्ञानिक व प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है। भूकंप पृथ्वी के आंतरिक भाग का एक उचित विचार देते हैं। यदि कोई इन भूकंपीय तरंगों का अध्ययन करे, तो वे पृथ्वी के आंतरिक भाग के बारे में अच्छी जानकारी दे सकते हैं। भूकम्पीय तरंगे भूकम्प के समय भूकम्प की कम्पन द्वारा अपनाया गया मार्ग होती है ये तरंगे तीन प्रकार की होती है। प्राथमिक (P) तरंगे सबसे तीव्र गति से चलती है एवं ठोस, तरल व गैस तीनां प्रकार के पदार्थो से गुजर सकती है, द्वितियक (S) तरंगे केवल ठोस पदार्थों के माध्यम से चलती है तरल पदार्थों से होकर नही गुजर सकती, धरातलीय (L) तरंगे धरातल पर ही चलती है एवं अधिकेन्द्र पर सबसे बाद मे पहुँचती है व सर्वाधिक विनाषकारी होती हैं। भूकम्पीय छाया क्षेत्र भूकम्प अधिकेन्द्र से 105^0 व 145^0 के बीच का क्षैत्र होता है। जहा कोई भी भूकम्पनीय तंरगे अभिलेखित नही होती है।

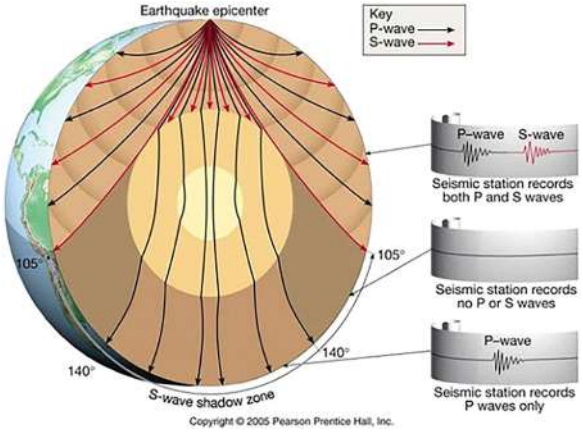

Copyright © 2005 Pearson Prentice Hall, Inc.

भूकम्पीय तरंगां के भ्रमण पथ व गति के आधार पर पृथ्वी के आंतरिक भाग के विषय में जानकारी प्राप्त होती है ।ये लहरें समान घनत्व वाले भाग में सीधी चलती हैं परन्तु भुकम्प केन्द्रां पर इन लहरों के अंकन से ज्ञात होता है कि ये लहरें एक सीधी दिषा में न चलकर वक्राकार मार्ग का अवलम्बन करती हैं इसमें प्रमाणित होता है कि भीतर के घनत्व में विभिन्नता है, परिणाम स्वरूप उनका मार्ग भी वक्राकार हो जाता है। चूंकि आंतरिक भाग की ओर घनत्व बढ़ता है अत: कोर में ये लहरें (P o S) वक्राकार होकर सतह की ओर अवतल हो जाती हैं । चूंकि S लहरें तरल पदार्थ से होकर नहीं गुजरती है, अत: 2900 किमी से अधिक गहराई, अर्थात भूक्रोड से विलुप्त हो जाती हैंअत: इससे प्रमाणित होता है कि इस 2900 कि.मी. से अधिक गहराई वाला भाग तरल अवस्था में है जो केन्द्र के चारों ओर विस्तृत है। चूंकि चट्टानों के घनत्व में अन्तर के साथ ही इन तरंगों की गति में तीन जगहों पर अधिक अन्तर आता है अत: इन आधारों पर पृथ्वी के आन्तरिक भाग कि तीन परतें निश्चित कि गई हैं।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना से सम्बंधित सिद्धांत:

अनेक पृथ्वी वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की आंतरिक संरचना के संबंध में विभिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं, जिनमे प्रमुख निम्लिखित हैं:

1. एडवर्ड सूऐस का सिद्धांत पृथ्वी की आंतरिक संरचना के रासायनिक गुणों से संबंधित है। उन्होंने पृथ्वी की आंतरिक संरचना को लगभग सामान गुणधर्म वाली तीन परतों सियाल, सिमा और निफे में विभाजित किया।
2. वैन डेर ग्राख्त ने पृथ्वी के आंतरिक भाग को चार परतों में वर्गीकृत किया। उनकी योजना पृथ्वी की आंतरिक परतों को उनकी संख्या, मोटाई और घनत्व गुणों आदि पर आधारित है।
3. आर्थर होम्स ने पृथ्वी की आंतरिक संरचना को दो प्रमुख परतों अर्थात ऊपरी और निचली परतों में वर्गीकृत किया है। ऊपरी परत को भूपर्पटी का नाम दिया गया है। एडवर्ड सूऐस द्वारा प्रस्तावित सियालिक परत और सीमा का शीर्ष भाग इस परत का निर्माण करते हैं। सबस्ट्रैटम निचली परत को दिया गया नाम है। यह एडवर्ड सूऐस की सीमा परत के निचले हिस्से से बना है। सियाल की मोटाई महाद्वीपीय आवरण के नीचे होती है। अन्य विद्वानों की भाँति उन्होंने भी पूर्व सिद्धांतों की पुष्टि की है। लेकिन वह पृथ्वी की आंतरिक संरचना का अधूरा सिद्धांत दिया। चूँकि, इसे तीन अलग-अलग परत प्रणालियों में पहचाना और वर्गीकृत किया गया है जिन्हें क्रमश: क्रस्ट, मेंटल और कोर के रूप में जाना जाता है।

उपरोक्त विभिन्न सिद्धांतों को एकीकृत करने के उपरांत पृथ्वी की आंतरिक संरचना की एक समग्र सोच बन पायी जो की निम्नलिखित है:

पृथ्वी का आकार चपटा गोलाकार है, क्योंकि यह ध्रुवों पर थोड़ा चपटा है और भूमध्य रेखा पर उभरा हुआ है। इन परतों के बीच की सीमाओं की खोज सिस्मोग्राफ द्वारा की गई, जिससे पता चला कि भूकंप के दौरान विभिन्न परतों से संपर्क में आने पर कैसे प्रभावित होती हैं ।

पृथ्वी की संरचना परतों में विभाजित है। ये परतें ढोस, भंगुर शैल-निर्मित **"क्रस्ट/पर्पटी";** एक भौतिक और रासायनिक दोनों रूप से अत्यधिक चिपचिपी परत जिसे **मेंटल** कहा जाता है, एक तरल परत जो कोर का बाहरी हिस्सा है, जिसे **"बाहरी कोर"**

कहा जाता है, और एक ठोस केंद्र जिसे **"आंतरिक कोर"** कहा जाता है।

"भूपर्पटी" पृथ्वी की सबसे बाहरी परत है। यह ठोस चट्टानों से बना है। यह अधिकतर हल्के तत्वों, सिलिकॉन, ऑक्सीजन, एल्यूमीनियम से बना होता है। इस कारण इसे **"सिआल"** (सिलिकॉन = सी; एल्युमीनियम = अल) या फेलसिक के नाम से जाना जाता है। मेंटल पृथ्वी की परत के ठीक नीचे की परत है। यह अधिकतर ऑक्सीजन, सिलिकॉन और भारी तत्व मैग्नीशियम से बना होता है। इसे सिमा (सिलिकॉन के लिए Si + मैग्नीशियम के लिए Ma) या माफिक के नाम से जाना जाता है।

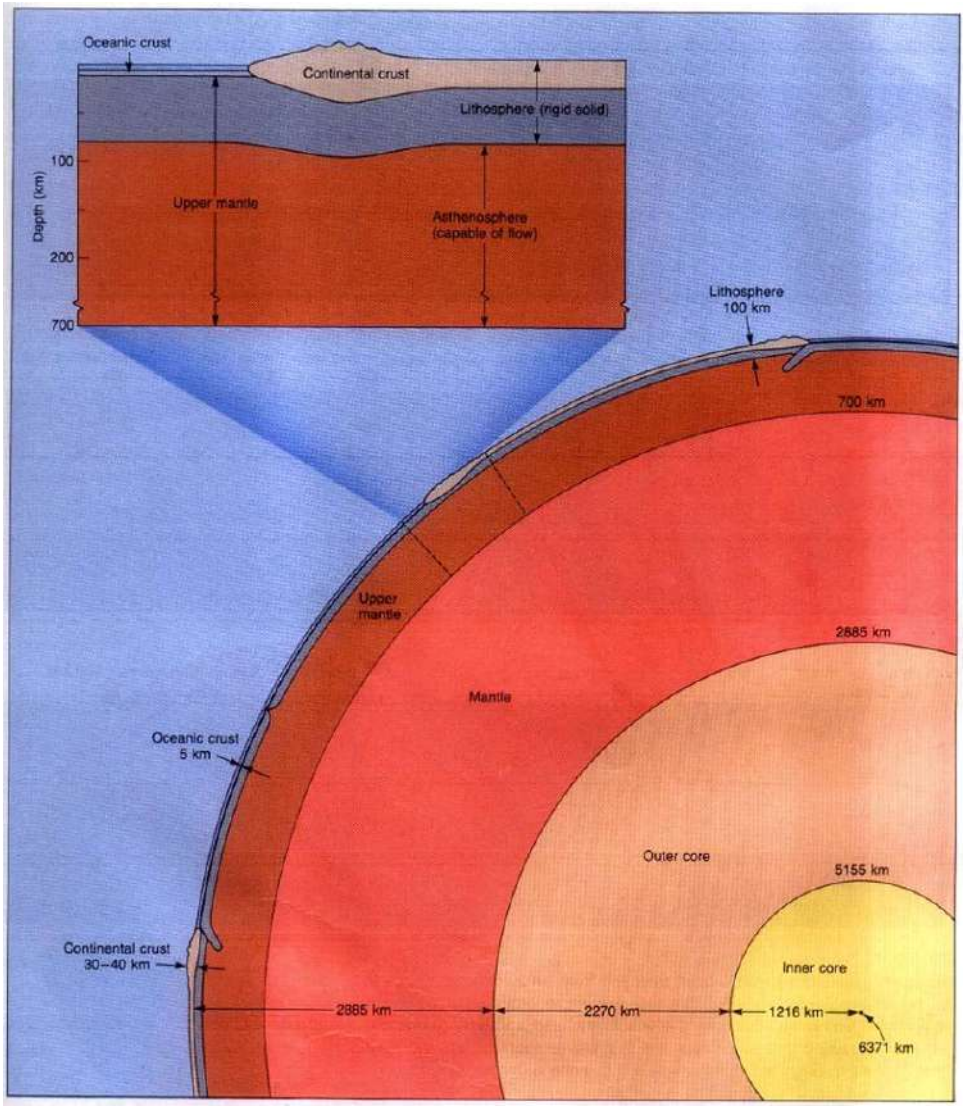

पर्पटी के नीचे पायी जाने वाली परत **"मेंटल"** कहलाती है, यह भारी चट्टान पेरिडोटाइट से बना है। मेंटल स्वयं परतों में विभाजित है। मेंटल का सबसे ऊपरी हिस्सा ठोस है, और क्रस्ट का आधार बनता है, और **बाहरी मेंटल** कहलाता है। यह दोनों मिलकर स्थलमंडल का निर्माण करता है। महाद्वीपीय और महासागरीय स्थल-मंडलीय प्लेटों में भूपर्पटी और मेंटल की सबसे ऊपरी ठोस परत दोनों शामिल हैं।

पृथ्वी की पर्पटी और मेंटल के बीच एक सीमा है जिसे **"मोहो"** कहा जाता है। गहराई के साथ, पृथ्वी की संरचना में बदलाव से सम्बंधित यह पहली खोज थी।

लिथोस्फीयर प्लेटें नीचे अर्ध-तरल एस्थेनोस्फीयर पर तैरती हैं। **ऊपरी एस्थेनोस्फीयर:** मैग्मा और निचला एस्थेनोस्फीयर: निचला मेंटल कहलाते हैं।

मेंटल के नीचे पृथ्वी का कोर/क्रोड़ क्षेत्र आता है। मेंटल और कोर की सीमा **"गुटेनबर्ग"** कहलाती है।

पृथ्वी का कोर द्वी-प्रकृति (dual nature) का है। यह लोहे और निकल से बना है, और इसका तापमान लगभग 5000-6000 डिग्री सेल्सियस है। बाहरी कोर, मेंटल के नीचे एक तरल परत है। आंतरिक कोर, पृथ्वी का बिल्कुल केंद्र में ठोस रूप में पाया जाता है।